साप्ताहिक
Live not just breaTHE

दि कार्मिक पोस्ट

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

Global School Of Excellence, Obedullaganj

वर्ष : 6, अंक : 40 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 26 मई से 1 जून 2021 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

2030 तक वैश्विक सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा बन जाएगा जलवायु परिवर्तन...

न्यूयार्क। अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा और सैन्य पेशेवरों के एक समूह का मानना है कि पानी पर जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभाव के कारण अगले दशक में वैश्विक सुरक्षा के लिए जोखिम बढ़ जाएगा। जलवायु और सुरक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय सैन्य परिषद (इंटरनेशनल मिलिट्री काउंसिल ऑन क्लाइमेट एंड सिक्योरिटी) ने दिसंबर 2019 में एक सर्वे किया। यह सर्वे 56 सुरक्षा और सैन्य विशेषज्ञों के साथ ही दुनिया भर के चिकित्सकों के बीच जलवायु सुरक्षा जोखिमों की धारणा का आकलन करने के लिए किया गया था। ये सर्वे रिपोर्ट वर्ल्ड क्लाइमेट एंड सिक्योरिटी रिपोर्ट में प्रकाशित हुआ था। रिपोर्ट के अनुसार, 93 प्रतिशत सैन्य विशेषज्ञों ने माना कि जल सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव 2030 तक वैश्विक सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण जोखिम उत्पन करेगा। लगभग 91 प्रतिशत ने माना कि ये जोखिम 2040 तक गंभीर या विनाशकारी हो जाएंगे।

अधिकांश विशेषज्ञों का मानना था कि 2040 तक विस्थापन और प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि होगी और इससे देशों के भीतर संघर्ष बढ़ेगा। 94 प्रतिशत से अधिक विशेषज्ञों ने जलवायु परिवर्तन के कारण खाद्य सुरक्षा संकट के और बढने की आशंका जताई। 86 प्रतिशत विशेषज्ञों ने जलवायु परिवर्तन के कारण 2040 तक वैश्विक सुरक्षा के लिए खतरा बढ़ने और राष्ट्रों के भीतर संघर्ष होने का आकलन किया है। इस रिपोर्ट में अफ्रीका, आर्कटिक, यूरोप, भारत-एशिया प्रशांत, मध्य-पूर्व, उत्तरी अमेरिका, दक्षिण-मध्य अमेरिका और कैरिबियन देशों में वैश्विक और क्षेत्रीय जलवायु और सुरक्षा जोखिमों का एक अवलोकन पेश किया गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका के सेंटर फॉर क्लाइमेट एंड सिक्योरिटी पर बने राष्ट्रीय सुरक्षा, सैन्य और खुफिया पैनल ने चेतावनी दी है कि अगले 30 वर्षों में उन देशों को भी गंभीर सुरक्षा जोखिमों का सामना करना पड़ेगा, जहां अभी वार्मिंग का स्तर कम है। रिपोर्ट में कहा गया है कि प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि और जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले विस्थापन में सैन्य और मानवीय हस्तक्षेप की जरूरत होगी।

मौसम में अनियमितता का असर- आईएमसीसीएस की रिपोर्ट में युगांडा का जिक्र है, जहां पूर्वी अफ्रीका में फैल रहे रेगिस्तानी टिड्डियों से बचने के लिए सेना की मदद ली गई थी. नाइजीरिया में, 2016 और 2018 के दौरान, चरवाहों और किसानों के बीच संघर्ष के कारण भारी नुकसान उठाना पड़ा था। अफ्रीका में लगभग 268 मिलियन (एक चौथाई आबादी) पशुपालक महाद्वीप के कुल जमीन के 43 प्रतिशत हिस्से में रहते थे. जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पर पर्याप्त ध्यान न देने और उचित नीतियों के कारण वहां जमीन संबंधी संघर्ष काफी बढ़ गए।

सक्रिय होने का समय- रिपोर्ट में ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों द्वारा अपनी रक्षा रणनीति में अपनाए गए सुरक्षा प्रथाओं पर प्रकाश डाला गया है। उदाहरण के लिए, विदेशी मामलों, रक्षा और व्यापार पर ऑस्ट्रेलिया की सीनेट समिति, ने जलवायु परिवर्तन को खतरा और बोझ को कई गुणा बढाने वाला माना है। हाल ही में जंगल में लगी आग को बुझाने में सहायता देने के लिए 6,400 से अधिक सैनिकों को बुलाया गया था। ऑस्ट्रेलिया का रॉयल कमीशन भविष्य में होने वाले फॉरेस्ट ऑपरेशन में सैन्य उपयोग को नियमित करने के लिए एक रिपोर्ट तैयार कर रहा है। न्यूजीलैंड ने भी जलवायु परिवर्तन को सुरक्षा जोखिम के रूप में माना है।

कितने तैयार है हम?- एक तरफ तो अफ्रीकी संघ ने जलवायु परिवर्तन को सुरक्षा के लिए खतरा मान लिया है, लेकिन इससे निपटने के लिए इसकी सैन्य तैयारी में भारी कमी है। रिपोर्ट इस बात की याद दिलाती है कि जलवायु परिवर्तन के खतरे को कम करना और अनुकूलन को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। एसोसिएशन ऑफ साउथ-ईस्ट एशियन नेशंस (आसियान) के रक्षा मंत्रियों (भारत समेत) को जलवायु और सुरक्षा पर सात विशेषज्ञ कार्यकारी समूह (ईडब्ल्यूजी) बनाने के लिए कहा गया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन पर ज्ञान और इससे निपटने की क्षमता काफी कमजोर है।

साभार - (डाउन टू अर्थ)

नाले के पानी में कोरोना वायरस की पुष्टि, देश के कई शहरों में कराए सर्वे में हुआ खुलासा

मुंबई कोरोना की दूसरी लहर के दौरान लखनऊ और मुंबई के सीवेज वाटर (नाले के पानी) में कोरोना वायरस की पुष्टि हुई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) व इंडियन काउंसिल आफ मेडिकल रिसर्च (आइसीएमआर) द्वारा संयुक्त रूप से देश के विभिन्न शहरों में कराए गए सर्वे के दौरान यह बात सामने आई है। एसजीपीजीआइ लखनऊ समेत आठ प्रयोगशालाओं को जांच कर पुष्टि करने का जिम्मा दिया गया है। मुंबई के सीवेज वाटर में भी वायरस मिलने की पुष्टि हुई है। अन्य शहरों में भी नमूने जांचे जा रहे हैं। इस रिपोर्ट के सामने आने के बाद नदियों में फेंके गए शवों के जरिये भी कोरोना फैलने की आशंका व्यक्त की जा रही है। पानी में मिले वायरस का क्या प्रभाव होगा, इस पर अलग से अध्ययन किया जाएगा। लखनऊ में घंटाघर, मछली मोहाल व रुद्रपुर खदरा के नालों से नमूने लिए गए थे। इनमें से सिर्फ रुद्रपुर खदरा के ही नमूने में कोरोना वायरस मिलने की पुष्टि हुई है। विशेषज्ञों के अनुसार पानी में वायरस मिलने का सामान्य जन-जीवन पर क्या असर पड़ेगा, इस प्रभाव को लेकर आगे अध्ययन किया जाएगा। एसजीपीजीआइ लखनऊ ने शासन के माध्यम से आइसीएमआर को रिपोर्ट भेज दी है। एसजीपीजीआइ में माइक्रोबायोलाजी की विभागाध्यक्ष डा. उज्ज्वला घोषाल ने बताया कि कोरोना संक्रमितों के स्टूल (मल) से सीवेज तक वायरस पहुंचा है। वर्ष 2020 में भी हुई थी जांच वर्ष 2020 में भी लखनऊ समेत उत्तर प्रदेश के कई शहरों के सीवेज से नमूने लिए गए थे, लेकिन कोरोना वायरस नहीं मिलने से बड़ी राहत महसूस की गई थी। विशेषज्ञों के अनुसार 25 से 50 फीसद संक्रमित मरीजों के स्टूल के जरिये वायरस सीवेज के पानी तक पहुंच सकते हैं। डा. उज्जवला ने बताया कि सीवेज का पानी नदियों में भी पहुंचता है। ऐसे में यह आम लोगों के लिए कितना नुकसानदेह होगा, इस बारे में अध्ययन किया जाना बाकी है।

साभार -

धरती पर हुआ बड़ा बदलाव, Death Valley नहीं, यह स्थान बना सबसे गर्म स्थान

कैलीफोर्निया।
शोध में पाया गया कि उत्तरी अमेरिका के सोनोरन रेगिस्तान और लुट रेगिस्तान की सतह का तापमान कैलीफोर्निया से ज्यादा रहता है। कैलीफोर्निया की डेथ वैली को धरती की सबसे गर्म जगह माना जाता है। यहां की हवा का तापमान दुनिया में सबसे ज्यादा है। लेकिन नई रिपोर्ट में ईरान के लुट रेगिस्तान को धरती की सबसे गर्म जगह बताया गया है। यहां की सतह का तपमान 177.4 डिग्री फॉरेन्हाइट है। जो कि पूरी धरती में सबसे ज्यादा है। डेथ वैली में हवा का तापमान 134.1 डिग्री फॉरेन्हाइट तक जा चुका है, जबकि लुट रेगिस्तान और अमेरिका के सोनोरन रेगिस्तान की सतह का तापमान इससे ज्यादा रह चुका है।

कैलिफोर्निया की यूनिवर्सिटी में हुए शोध में इरविन ने पाया कि उत्तरी अमेरिका के सोनोरन रेगिस्तान और लुट रेगिस्तान की सतह का तापमान इससे ज्यादा रहता है। हालांकि, लुट में तापमान लगातार सबसे ज्यादा बना रहता है। वहीं, अंटार्कटिका दुनिया की सबसे ठंडी जगह है। यहां की सतह का तापमान -199.6 डिग्री फॉरेन्हाइट जा चुका है। शोध के दौरान वैज्ञानिकों ने यूनाइटेड स्टेट की हाई रिज़ॉल्यूशन सैटेलाइट से मिले डेटा की जांच की। ये सैटेलाइट पिछले 2 दशकों से पूरी धरती के तामपान का निरीक्षण कर रही है। इस शोध में सामने आया है कि लुट रेगिस्तान में दुनिया की सबसे गर्म सतह है। यहां 2002 से 2019 के बीच लगातार तामपान सबसे ज्यादा रहा है। यह रेगिस्तान पहाड़ियों के बीच स्थित है। इस वजह से यहां गर्म हवा आसानी से पहाड़ की चोटियों के बीच कैद हो जाती है। इससे पहले 2011 में हुई रिसर्च में कहा गया था कि लुट रेगिस्तान में 159.3 डिग्री फॉरेन्हाइट तक अधिकतम तापमान हो सकता है। नई रिसर्च में बताया गया है कि यहां का तापमान इससे 10 डिग्री सेल्सियस ज्यादा है। अमेरिका और मैक्सिको के बॉर्डर पर स्थित सोनोरन रेगिस्तान में भी तामपान बहुत ज्यादा रहता है। हालांकि, यहां लुट की तुलना में तापमान कम ही मौकों पर इतना ज्यादा रहता है। हालांकि, इसके बावजूद डेथ वैली में हवा का तापमान सबसे ज्यादा है। नेशनल पार्क सर्विस के मुताबिक धरती में सबसे गर्म हवा साल 1913 में फुरनैस क्रीक में दर्ज की गई थी। यहां गर्मी के मौसम में हवा का तापमान 120 डिग्री फॉरेन्हाइट से 90 डिग्री फॉरेन्हाइट के बीच रहता है। वहीं शोध करने वाले वैज्ञानिकों का कहना है कि अंटार्कटिका दुनिया की सबसे ठंडी जगह है। यहां का तापमान लगातार -199.6 डिग्री फॉरेन्हाइट के करीब रहता है, जो कि 2011 में हुई रिसर्च के आंकड़े से 20 डिग्री कम है। शोधकर्ताओं का कहना है कि अंटार्कटिका चारो तरफ से समुद्र से घिरा हुआ है। इस वजह से वहां की सतह का तापमान सबसे कम रहता है। हालांकि इस शोध में यह स्पष्ट नहीं हुआ है कि जलवायु परिवर्तन से इसमें कोई बदलाव आएगा या नहीं। हालांकि, भविष्य में होने वाले शोध में यह बात सामने आ सकती है कि इन जगहों का तापमान आगे कैसा रहेगा और हमारी जलवायु को किस तरह प्रभावित करेगा। साभार - (डाउन टू अर्थ)

मंगल और बृहस्पति ग्रह के बीच हिमालय से 25 गुना बड़ा एस्टेरॉयड, वैज्ञानिक इसलिए हो रहे हैरान

न्यूजर्सी। यूं तो खगोलीय घटना पुरातन काल से इंसानों के लिए जिज्ञासा और रहस्य से भरी रही है, लेकिन आधुनिक विज्ञान की सहायता से की जा रही रिसर्च के कारण अब नए नए खुलासे हो रहे हैं। इन खगोल वैज्ञानिक एक ऐसे एस्टेराइड को लेकर हैरान हैं, जो मंगल ग्रह और बृहस्पति ग्रह के बीच चक्कर लगा रहा है। वैसे तो इस एस्टेडाइ की खोज आज से करीब 150 साल पहले कर ली गई थी, लेकिन इस एस्टेरॉइड की अदुभुत संरचना को लेकर अब वैज्ञानिक भी हैरान है। मंगल और बृहस्पति ग्रह के बीच में माउंट एवरेस्ट से 25 गुना एक बड़ा धातु का एस्टेरॉयड चक्कर लगा रहा है। अमेरिकी स्पेस एजेंसी NAS ने अब इस एस्टेरॉइड पर शोध के लिए अपना एक स्पेसक्रफ्ट भेजा है। ऐसा माना जा रहा है कि इससे मिलने वाली जानकारी के आधार सौरमंडल के निर्माण को लेकर हमारी बदल सकती है। जनवरी 2026 में Psyche नाम के इस एस्टेरॉयड पर NASA का स्पेसक्राप्ट पहुंचेगा। गौरतलब है कि एस्टेरॉयड को Psyche नाम आत्मा की ग्रीक देवी के नाम पर रखा गया है। गौरतलब है कि Psyche एस्टेरॉयड की खोज 17 मार्च 1852 को इटली के खगोल वैज्ञानिक एनीबेल डी गैस्पारिस ने की थी। यह मंगल और बृहस्पति के बीच मौजूद एस्टेरॉयड बेल्ट में एक विशालकाय धातु पिंड है। खगोल वैज्ञानिकों को भी लगता है कि एस्टेरॉयड बेल्ट में स्थित लाखों एस्टेरॉयड्स में फैले सभी मास का लगभग 1 प्रतिशत सिर्फ Psyche एस्टेरॉयड में शामिल है। ऐसे में वैज्ञानिक भी इस एस्टेरॉयड की संरचना को लेकर वैज्ञानिक खासा उत्साहित हैं। साभार - (डाउन टू अर्थ)

इमेजिंग तकनीक से पता लगाया जा सकता है कि भूस्खलन होने की आशंका कहां है...

मुबई। नई तकनीक का उपयोग अत्यधिक संवेदनशील परियोजनाओं के निर्माण जैसे परमाणु ऊर्जा या पानी के लिए भंडारण सुविधाएं कहां होनी चाहिए या कहां नहीं यह निर्धारित करने के लिए भी किया जा सकता है। हर साल भूस्खलन से दुनिया भर में हजारों लोग मारे जाते हैं और संपत्ति का नुकसान होता है। लेकिन वैज्ञानिक अभी भी उन परिस्थितियों को बेहतर ढंग से समझने की कोशिश कर रहे हैं जो उन्हें पैदा करती हैं। उन परिस्थितियों के बारे में बेहतर समझ से लोगों को यह अनुमान लगाने में मदद मिलेगी कि भूस्खलन कहां हो सकता है और वह कितना गंभीर होगा। इस बात का पता लगाने के लिए पृथ्वी और अंतरिक्ष विज्ञान के लॉस एंजिल्स में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय (यूसीएलए) के प्रोफेसर सेल्गी मून के नेतृत्व में एक अध्ययन किया गया है, जो भविष्य के लिए एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है। मून और जेन ली ने यह समझने के लिए एक नई विधि बनाई है, जिसके तहत पता लगाया जा सकता है कि किसी स्थलाकृतिक में तनाव कैसे होता है। यह सभी जानते हैं कि, यह तब होता है जब पृथ्वी की सतह के नीचे टेक्टोनिक प्लेट्स एक दूसरे की ओर खिसकती हैं जो ऊपर के भाग को बदलने के लिए पर्याप्त होती हैं, यही भूस्खलन की घटनाओं को प्रभावित करती हैं। यह प्राकृतिक प्रक्रियाओं के बारे में जानकारियों को जोड़ने वाला पहला अध्ययन है जो पृथ्वी की सतह और टेक्टोनिक या विवर्तनिक स्तर दोनों पर होता है। मून ने कहा हमने पाया कि बड़े भूस्खलन की भयावहता न केवल ढलान और वर्षा जैसी स्थानीय परिस्थितियों से प्रभावित होती है, बल्कि गहरे भूमिगत बलों से भी प्रभावित हो सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि पृथ्वी की सतह की प्रक्रियाओं को बेहतर ढंग से समझने के लिए जमीन के ऊपर और नीचे के परस्पर प्रभाव को समझना महत्वपूर्ण है। अध्ययन के लिए, वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की सतह के नीचे गहरे स्थानों की पहचान करने के लिए 3 डी स्थलाकृतिक तनाव मॉडलिंग नामक एक मौजूदा तकनीक को नए तरीके से विकसित किया। जहां लंबे समय से चट्टानों पर मौसम की मार पड़ रही होती है, जिसका अर्थ है कि वे प्राकृतिक भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से कमजोर हो गए हैं या टूट गए हैं। उन स्थानों की पहचान करके, मॉडल यह निर्धारित कर सकता है कि कौन से स्थान भूस्खलन के लिए सबसे अधिक संवेदनशील हैं। यह अध्ययन नेचर जियोसाइंस में प्रकाशित हुआ है। मून ने कहा भूस्खलन से निपटने की योजना बनाने के लिए पृथ्वी विज्ञान और भूविज्ञान को समझना महत्वपूर्ण है। मून और ली ने पूर्वी तिब्बती पठार पर लॉन्गमेन पर्वत पर शोध किया। इसके लिए उन्होंने भूस्खलन के आकार और स्थानों का पता लगाने के लिए उच्च-रिज़ॉल्यूशन उपग्रह छवियों का उपयोग किया। उन उपग्रह छवियों की तुलना उन्हीं स्थानों पर चट्टानों के टूटने और धीरे-धीरे नष्ट होने से की जाती है, जिनके बारे में मून ने कहा कि पृथ्वी की सतह की स्थलाकृति से पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में जमीन के नीचे की चट्टान विशेष रूप से कमजोर या टूट गए हैं, वे बड़े भूस्खलन की चपेट में आ सकते हैं। मून की तकनीक, जो उच्च-रिज़ॉल्यूशन भूमिगत तनाव के आंकड़ों का उपयोग करती है, इसने वैज्ञानिकों को चट्टानों के टूटने के बारे में पता लगाने में सक्षम बनाया जो। इसके बिना इसका पता नहीं लगाया जा सकता है, क्योंकि यह पृथ्वी की सतह के नीचे 500 मीटर या लगभग 1600 फीट नीचे होता है। उच्च-रिज़ॉल्यूशन भूमिगत तनाव के आंकड़े शोधकर्ताओं को उच्च तनाव के कारण क्षतिग्रस्त जमीन के नीचे के क्षेत्रों का पता लगाने में मदद करती है। नई तकनीक का उपयोग अत्यधिक संवेदनशील परियोजनाओं के निर्माण जैसे परमाणु ऊर्जा या पानी के लिए भंडारण सुविधाएं कहां होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए यह निर्धारित करने के लिए भी किया जा सकता है।

जड़ी-बूटियों की पैदावार को प्रोत्साहन देने की जरूरत

लखनऊ। औषधि एवं सुगंध वाले पौधों के साथ ही जड़ी-बूटियों की वाणिज्यिक उपज भी भारतीय कृषि की एक आकर्षक शाखा के तौर पर उभर रही है। पारंपरिक स्वास्थ्य देखभाल क्षेत्र को आपूर्ति के लिए अमूमन जड़ी-बूटियों को जंगलों से इकट्ठा किया जाता रहा है। फार्मा उद्योग एवं सौंदर्य प्रसाधन क्षेत्र को भी ये जड़ी-बूटियां जंगलों से ही इकट्ठा कर भेजी जाती रही हैं। लेकिन इन औषधीय पौधों का प्राकृतिक आवास काफी हद तक अतिक्रमण का शिकार हो चुका है। यानी परंपरागत तरीकों से इन जड़ी-बूटियों की आपूर्ति घरेलू एवं निर्यात बाजार की मांग के अनुरूप नहीं की जा सकती है। लिहाजा उनकी वाणिज्यिक खेती का ही तरीका बच जाता है।

खास तरह की यह खेती काफी हद तक मांग पर आधारित है और खुद सरकार भी राष्ट्रीय आयुष मिशन जैसे अभियानों के जरिये इसे प्रोत्साहन दे रही है। आयुष मिशन के तहत आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध एवं होम्योपैथी चिकित्सा पद्धतियों को बढ़ावा देने का लक्ष्य रखा गया है। इन चारों इलाज पद्धतियों को ही संक्षिप्त रूप से आयुष का कूटनाम दिया गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) का अनुमान है कि दुनिया की करीब दो-तिहाई आबादी अब भी आंशिक या पूर्ण रूप से इलाज की इन पारंपरिक पद्धतियों पर ही आश्रित है। पारंपरिक दवाओं के साथ आधुनिक दवाओं के लिए भी करीब 80 फीसदी कच्चा माल इन जड़ी-बूटियों से ही आता है। जड़ी-बूटी वाले औषधीय उत्पादों का सालाना कारोबार घरेलू बाजार में करीब 8,000-9,000 करोड़ रुपये और निर्यात बाजार में करीब 1,000 करोड़ रुपये रहने का अनुमान है। इस साल इन आंकड़ों में खासी उछाल आती हुई दिख रही है। इसका कारण यह है कि कोविड-19 महामारी के दौरान प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में मददगार बताई जा रही इन औषधियों की मांग बहुत तेजी से बढ़ी है। देसी काढ़ा जैसे औषधीय मिश्रण में इस्तेमाल होने वाली तुलसी, दालचीनी, सूखी अदरक एवं काली मिर्च की इन दिनों पुरजोर मांग है। आयुष मंत्रालय ने कोविड से हल्के स्तर पर पीड़ित लोगों के इलाज में मददगार दवा आयुष-64 एवं सिद्ध उत्पाद कबासुर कुडिनीर के वितरण के लिए हाल ही में देशव्यापी अभियान हाल ही में शुरू किया है। मंत्रालय ने भारतीय चिकित्सा एवं अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) के साथ मिलकर आयुष-64 दवा के क्लिनिकल परीक्षण कई जगहों पर करवाए हैं। इसी तरह कबासुर कुडिनीर का परीक्षण केंद्रीय सिद्ध अनुसंधान परिषद ने किया है। हरियाणा सरकार ने आयुर्वेदिक विशेषज्ञों से सलाह की 24 घंटे वाली टेली-कॉन्फ्रेंसिंग सेवा भी शुरू की है ताकि कोविड-19 संक्रमितों को अस्पताल ले जाने की नौबत न आए। कई स्वैच्छिक संगठन भी योग एवं स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों के बारे में ऐसी ही परामर्श सेवाएं मुहैया करा रहे हैं। इनका मकसद यही है कि कोविड-19 संक्रमण को शुरुआती दौर में ही संभाल लिया जाए। कई होम्योपैथी डॉक्टर भी इस जानलेवा बीमारी के लक्षणों के इलाज में सफलता मिलने का दावा कर रहे हैं। कोविड की निरोधक दवाओं के तौर पर आर्सेनिक एल्ब, इन्फ्लुएंजियम एवं कैम्फर जैसी कुछ होम्योपैथी दवाओं की मांग हाल में खूब बढ़ी है। भारत इस लिहाज से खुशकिस्मत है कि यहां चिकित्सकीय गुणों से युक्त एवं सुगंध वाले पौधों की काफी विविधता मौजूद है। इसके 15 कृषि-जलवायु क्षेत्रों में 17,000-18,000 पौधे पाए जाते हैं। इनमें से करीब 7,000 पौधों में बीमारियों का इलाज करने की क्षमता एवं अन्य वाणिज्यिक गुण पाए जाते हैं। लेकिन विडंबना ही है कि फिलहाल 960 से अधिक जड़ी-बूटियों का कारोबार नहीं हो पा रहा है। असल में, सिर्फ 178 पौधे ही साल भर में 100 टन से अधिक मात्रा में इस्तेमाल किए जाते हैं। इन औषधीय पौधों की मांग नहीं बल्कि कम उपलब्धता ही इनमें से कई पौधों के कम उपयोग के लिए आंशिक तौर पर जिम्मेदार है। इस बात को ध्यान में रखते हुए सरकार ने इन जड़ी-बूटियों की आपूर्ति बढ़ाने के लिए उन्हें प्रोत्साहन देना शुरू किया है। इसके लिए आयुष मिशन के तहत करीब 140 औषधीय पौधों को चिह्नित किया गया है। कच्चे माल के तौर पर इन जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल करने वाले उद्योगों को इनकी खेती के प्रायोजन की अनुमति भी दे दी गई है। इसमें उद्योग कंपनियां उत्पादकों के साथ उपज खरीद का करार करती हैं। जड़ी-बूटियों की विशिष्ट खेती हमें राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु, पंजाब, हरियाणा, छत्तीसगढ़, अरुणाचल प्रदेश और समूचे हिमालयी क्षेत्र में देखने को मिल रही है।

कर्नाटक इस लिहाज से खास है कि इसकी व्यापक प्राकृतिक विरासत में 2,500 से भी अधिक चिकित्सकीय एवं सुगंधित पौधे पाए जाते हैं। अश्वगंधा, चंदन, लेमन ग्रास, चमेली, सिट्रोनेला एवं रजनीगंधा के अलावा कर्नाटक की जलवायु तुलसी, एलोवेरा, गुग्गल, श्रीफल (बेल) एवं स्टेविया (मीठी तुलसी) के लिए भी खासी अनुकूल है। भारत का हर्बल सौंदर्य उत्पाद उद्योग वर्ष 2017 से ही करीब 19 फीसदी की दर से वृद्धि कर रहा है और देश में औषधीय गुणों वाले पौधों की उपज बढ़ाने में इसकी भी अहम भूमिका रही है। भारत फूलों एवं दूसरे पादप स्रोतों की मदद से सुगंधित द्रव्य एवं इत्र बनाने में अग्रणी रहा है। सदियों पहले बनाए गए ये इत्र अब भी मांग में हैं और घरेलू एवं वैश्विक परफ्यूम ब्रांडों से मिलने वाली प्रतिस्पर्द्धा के बावजूद इनकी मांग कायम है। विज्ञापन एजेंसियां भी ऑर्गेनिक सौंदर्य एवं त्वचा देखभाल वाले उत्पादों के पक्ष में राय बनाने में मददगार साबित हो रही हैं। जड़ी-बूटियों की प्राथमिक मार्केटिंग काफी हद तक असंगठित ही होती है जिसमें न कोई नियमन है और न ही वह पारदर्शी होता है। स्थानीय स्तर पर लगने वाले हाट-बाजारों में उनकी खरीद-फरोख्त होती है और वहां बिचौलियों का दबदबा होता है। छोटे उत्पादकों एवं आदिवासी संग्राहकों का शोषण खूब होता है। इन गलत चीजों को दुरुस्त करने की जरूरत है ताकि जड़ी-बूटियों की खेती का तीव्र विकास हो सके। स्वास्थ्य देखभाल क्षेत्र एवं अन्य उद्योग भी एक हद तक इन पर आश्रित हैं। साभार - (डाउन टू अर्थ)

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की मदद से चलेगा नदी के पानी की गुणवत्ता का पता

नई दिल्ली। पेंसिल्वेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी की अगुवाई वाली शोधकर्ताओं की एक टीम के अनुसार, दूरदराज के क्षेत्रों में नदी के पानी के नमूने एकत्र करने में होने वाली कठिनाई और इस पर होने वाले खर्च से निजात मिल सकती है। टीम पानी की गुणवत्ता का पूर्वानुमान लगाने और आंकड़ों के अंतर को पूरा करने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, एआई) का उपयोग कर रही है। उनके इन प्रयासों से इस बात को बेहतर तरीके से समझा जा सकता है कि नदियां मानवीय गड़बड़ी और जलवायु परिवर्तन से किस तरह मुकाबला करती हैं। शोधकर्ताओं ने एक ऐसा मॉडल विकसित किया जो पानी में घुली हुई ऑक्सीजन या डिजाल्व ऑक्सीजन का पता लगाता है। इससे पानी में रहने वाले जीवों के स्वास्थ्य के बारे में भी अनुमान लगाया जा सकता है।

आमतौर पर, नदियों और नालों में घुली हुई ऑक्सीजन की मात्रा उनके पारिस्थितिक तंत्र के स्वास्थ्य के बारे में बताती है, क्योंकि कुछ जीव ऑक्सीजन का उत्पादन करते हैं जबकि अन्य इसका उपभोग करते हैं। पेन स्टेट में सिविल और पर्यावरण इंजीनियरिंग के प्रोफेसर ली ली के अनुसार, मौसम और ऊंचाई के आधार पर भी घुली हुई ऑक्सीजन अलग-अलग होती है। क्षेत्र की स्थानीय मौसम में आने वाले उतार-चढ़ाव की वजह से भी इसमें बदलाव होता है। ली ने कहा लोग आमतौर पर घुली हुई ऑक्सीजन के बारे में सोचते हैं जो जैविक और भू-रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा संचालित होती है, जैसे पानी में सांस लेने वाली मछली या जलीय पौधे धूप के दिनों में घुली हुई ऑक्सीजन बनाते हैं। लेकिन मौसम भी एक प्रमुख बदलाव करने वाला हो सकता है। तापमान और सूरज की रोशनी सहित जल और मौसम संबंधी स्थितियां, पानी में जीवन को प्रभावित कर रही हैं, यह बदले में घुली हुई ऑक्सीजन की मात्रा को प्रभावित करती है। सिविल और पर्यावरण इंजीनियरिंग विभाग में पोस्टडॉक्टरल शोधकर्ता वेई ज़ी ने कहा कि हाइड्रोमेटोरोलॉजिकल आंकड़े जो इस बात पर नजर रखते हैं कि पृथ्वी की सतह और वायुमंडल के बीच पानी कैसे बहता है। जल रसायन विज्ञान के आंकड़ों की तुलना में कई बार यह स्थानीय कवरेज के आधार पर दर्ज किया जाता है।

टीम ने अलग-अलग देशों के हाइड्रोमेटोरोलॉजिकल आंकड़ों के आधार पर विश्लेषण किया, जिसमें वायु तापमान, वर्षा और पानी के बहने की दर जैसे माप शामिल थी। इस डेटाबेस का उपयोग दूरस्थ क्षेत्रों में घुली हुई ऑक्सीजन सांद्रता के पूर्वानुमान लगाने के लिए किया जा सकता है। झी ने कहा कि हाइड्रोमेटोरोलॉजिकल के बहुत सारे आंकड़े उपलब्ध हैं और हम यह देखना चाहते थे कि क्या यह आपस में मेल खाते हैं या नहीं। यहां तक ??कि अप्रत्यक्ष रूप से, यह पूर्वानुमान लगाने और नदी के पानी के आंकड़ों के अंतर को पूरा करने में मदद कर सकता है। पेन स्टेट में सिविल और पर्यावरण इंजीनियरिंग के एसोसिएट प्रोफेसर चाओपेंग शेन के अनुसार, मॉडल को आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) फ्रेमवर्क के माध्यम से बनाया गया था, जिसे लॉन्ग शॉर्ट-टर्म मेमोरी (एलएसटीएम) नेटवर्क के रूप में जाना जाता है, जो प्राकृतिक ÷स्टोरेज एंड रिलीज÷ सिस्टम के मॉडल बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। शोधकर्ता शेन ने कहा इसे एक डिब्बे की तरह समझा जा सकता है। यह पानी को अपने अंदर ले सकता है और इसे कुछ दरों पर एक टैंक में स्टोर कर सकता है, जबकि दूसरी तरफ इसे अलग-अलग दरों पर छोड़ा जाता है और उनमें से प्रत्येक दर प्रशिक्षण द्वारा निर्धारित की जाती है। हमने अतीत में इसका उपयोग मिट्टी की नमी, वर्षा प्रवाह, पानी के तापमान और अब घुली हुई ऑक्सीजन के मॉडल के लिए किया है। शोधकर्ताओं ने लॉन्ग शॉर्ट-टर्म मेमोरी (एलएसटीएम) नेटवर्क को प्रशिक्षित करने और एक मॉडल बनाने के लिए, 1980 से 2000 तक वाटरशेड के आंकड़ों का उपयोग किया, जिसमें घुली हुई ऑक्सीजन की सांद्रता, हर दिन के जल-मौसम विज्ञान की माप और स्थलाकृति, भूमि कवर और वनस्पति जैसे वाटरशेड गुण शामिल हैं। ज़ी के अनुसार, टीम ने 2001 से 2014 तक शेष घुली हुई ऑक्सीजन के आंकड़ों के खिलाफ मॉडल की सटीकता से परीक्षण किया, जिसमें पाया कि मॉडल ने आम तौर पर घुली हुई ऑक्सीजन के घुलनशीलता के बारे में पता लगाया, जिसमें गर्म पानी के तापमान और अधिक ऊंचाई पर ऑक्सीजन किस तरह कम हो जाती है। ज़ी ने कहा यह वास्तव में एक मजबूत उपकरण है। यह देखकर हमें आश्चर्य हुआ कि मॉडल ने महाद्वीपीय पैमाने पर कई अलग-अलग वाटरशेड स्थितियों में घुली हुई ऑक्सीजन का अच्छी तरह से पता लगाया। यह शोध पेंसिल्वेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी द्वारा किया गया है। उन्होंने कहा कि मॉडल ने स्थिर घुली हुई ऑक्सीजन स्तरों और स्थिर जल प्रवाह की स्थिति वाले क्षेत्रों में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया, लेकिन अधिक घुली हुई ऑक्सीजन और बहते पानी में बदलाव वाले वाटरशेड के लिए पूर्वानुमान में सुधार करने के लिए अधिक आंकड़ों की आवश्यकता होगी।

साभार - (डाउन टू अर्थ)

लू के कारण हो सकता है फसलों को 10 गुना अधिक नुकसान

हैदराबाद। जलवायु परिवर्तन के चलते बढ़ते तापमान से न केवल अर्थव्यवस्थाओं के प्रभावित होने के आसार हैं, बल्कि लू (हीट वेव) जैसी चरम घटनाओं में वृद्धि के कारण फसलों को भी भारी नुकसान हो सकता है। कोलोराडो विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं की अगुवाई में किए गए एक शोध में पाया गया है कि लू के समय के साथ-साथ लगातार और तीव्र होने की आशंका है। शोधकर्ताओं ने बताया कि पहले जितना अनुमान लगाया गया था उसकी तुलना में यह फसलों को 10 गुना अधिक नुकसान पहुंचा जा सकता है। शोधकर्ताओं ने दुनिया भर के 1979 से 2016 के डेटासेट का विश्लेषण किया और पाया कि जितना सोचा गया था लू से कृषि को उससे भी अधिक नुकसान हुआ है। टीम ने असामान्य रूप से पड़ रही भयंकर गर्मी की अवधि और व्यापकता की पहचान करके आंकड़ों का विश्लेषण किया। इस पद्धति का उपयोग करते हुए, टीम को इस बात के सबूत मिले कि अत्यधिक गर्मी के लगातार बढ़ते दिनों का फसलों पर बुरा असर पड़ता है, जिसके लिए केवल बढ़ता तापमान जिम्मेवार है। इस शोध में कोलोराडो विश्वविद्यालय में पर्यावरण अध्ययन के सहायक प्रोफेसर स्टीव मिलर प्रमुख शोधकर्ता हैं। उनके साथी अर्थशास्त्री जे. कॉगिन्स और केएन चुआ मिनेसोटा विश्वविद्यालय से हैं और विस्कॉन्सिन-मिल्वौकी विश्वविद्यालय से हामिद मोहतादी ने इसमें अहम भूमिका निभाई है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता के लिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008